भूमिका

हिंदी साहित्य के इतिहास को चार कालक्रमों में विभाजित किया गया है- आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल और मध्यकाल। आदिकाल में यौनिकता के विमर्श की चर्चा नहीं मिलती और भक्तिकाल भी स्त्री यौनिकता को केंद्र में रखकर नहीं लिखा गया है। स्त्री यौनिकता के विमर्श पर चर्चा की शुरुआत रीतिकाल से मानी जा सकती है। रीतिकाल एक लम्बा समय रहा है जिसके केंद्र में स्त्री होने के बावजूद भी स्त्री के प्रति कोई वैचरिक परिवर्तन दिखाई नहीं देता। रीतिकाल ऐसा युग रहा है जिसने स्त्री की यौनिकता पर बात तो की लेकिन इसके पीछे की विचार दृष्टि, श्रृंगारिकता का आनन्द लेना और भोग विलासिता बनकर रह गई। इस युग में स्त्री के शारीरिक सौन्दर्य, यौवन और आंगिक चेष्टाओं आदि का वर्णन अधिक मिलता हैं। इस प्रकार का वर्णन स्त्री और उसकी यौनिकता से संबंधित कई सवालों को पैदा करता है। यदि स्त्री के दृष्टिकोण से यौनिकता को देखे तो इसका आलोचनात्मक पक्ष दिखाई देता है जिसे न साहित्य स्वीकार करता है और न ही समाज।

बीसवीं सदी का महिला लेखन सुधारवाद से अस्तित्ववाद की तरफ झुका हुआ दिखाई देता है। इसके प्रथम दशक में स्त्री जाग्रति की चेतना व्यापक रूप से उभरती हुई प्रतीत होती है। स्त्री 'दर्पण' पत्रिका में स्त्री आन्दोलन को जगह मिली है। महिलाओं पर लेखन कार्य ऐसे स्त्री पात्रों को सामने लाया गया, जो सुधारवाद की चेतना के प्रतीक बने। प्रेमचंद के उपन्यासों और कहानियों की स्त्री पात्र धनिया, निर्मला और जेनेन्द्र के उपन्यासों की स्त्री पात्र मृणाल और सुनीता तथा यशपाल के स्त्री पात्रों में तारा और कनक और अज्ञेय के स्त्री पात्र शशि और रेखा, भगवतीचरण वर्मा की चित्रलेखा और रेखा जैसी स्त्री पात्रों की रचनाकार स्त्री और समाज के आपसी संबंध और उनके संक्रांति बिंदुओं की पड़ताल करते नजर आते हैं। इसके बाद प्रश्न आजादी, अस्तित्व,स्थान और संकट का उठता है। जिनमें महादेवी वर्मा युगानुरूप भावनाओं को स्थान देती है और श्रृंखला की कड़ियाँ, निबंध में स्त्री को तत्कालीन स्थिति पर बेबाक लेखन कार्य करती है। इसके बाद तो

महिला लेखन की दिशा में नए प्रयास होने लगे। इनमें मन्नू भंडारी, कुसम कुमार, मृणाल पाण्डेय, मृदुला गर्ग, सुधा अरोड़ा, कृष्णा सोबती, मैत्रेयी पुष्पा आदि लेखिकाओं ने स्त्री की आजादी और अधिकारों पर लगातार प्रश्न खड़े करके अपने आधिकारों के पक्ष में बात की है।

व्यतीत हुई बीसवीं शताब्दी के लिखित साहित्य को स्मरण करे तो महिला लेखन सुधारवाद से अस्तित्ववाद तक की यात्रा तय करता है। इसी बीच यौनिकता पर जो साहित्य लिखा गया है उसमें खुले तौर पर यौनिकता पर चर्चा बहुत कम देखने को मिलती है। आधुनिकता की मांग और भूमंडलीकरण ने स्त्री की जो छवि बनाई है उसने यौनिकता के विमर्श को जन्म दिया। इसी को आधार बनाकर लेखकों ने लेखन कार्य किया। साहित्य में यौनिकता का जो विमर्श दिखाई देता है उसे स्त्री-पुरुष के सबंध और विवाह संस्था से जोड़कर कुंठा, घुटन आदि दायरों में बांधकर दिखाया गया। लेकिन नारीवादी दृष्टिकोण ने यौनिकता के विमर्श को समाजिक तंत्र से जोड़कर देखा।जो एक अहम आधार बनकर उभरा लेकिन साहित्य ने इसे एक चुनौती के रूप में स्वीकार किया।

आधुनिक समय में **'यौनिकता का विमर्श'** एक चुनौती के रूप में देखा जा सकता है। सिनेमा, पत्रकारिता, भूमंडलीकरण और विज्ञापन आदि ने **'यौनिकता के विमर्श'** को जन्म दिया है। साहित्य ने इन सभी पक्षों के आधार पर **'नारी देह विमर्श'**को समस्या के रूपमें उठाया है। नारीवादी विद्वानों ने **'स्त्री की देह'** को किस रूप में समझा है ? और साहित्य इसे किस रूप में स्थापित करता है ? इन सब चुनौतियों को विषय समस्या के रूप में उठाया जा रहा है।

स्त्री देह विमर्श का नाम आते ही हम उसकी जैविकीय (प्राकृतिक) समझ तक ही सीमित रह जाते हैं। इसके पीछे का कारण समाजिक तंत्र से दरकिनार कर जाना है।यौनिकता का विमर्श स्त्री पक्ष में एक बहुत बड़ा क्षेत्र है क्योंकि स्त्री से जुड़ी हर समस्या स्त्री की सेक्सुअलिटी के इर्द-गिर्द घूमती है। स्त्री की सेक्सुअलिटी को सिर्फ उसकी पवित्रता, कौमार्य तथा नैतिकता आदि से

जोड़कर देखना ही उत्कृष्ट माना जाता रहा है। उसका अपनी सेक्सुअलिटी पर अधिकार क्या है ? समाज द्वारा स्त्री पर विचार करते हुए इन सभी पहलुओं पर मौन क्यों साध लिया जाता है ? साहित्य और सिनेमा का व्यावहारिक जीवन मेंऔर हिंदी साहित्य में **'यौनिकता के विमर्श'** की पहचान और दायरे क्या हो सकते हैं ? स्त्री अपनी सेक्सुअलिटी पर बात करे या न करे इसका निर्णय समाज करता है। स्वतंत्र यौन इच्छा रखने वाली स्त्री को यह समाज, नष्ट हो जाने की कगार तक पँहुचा देता है। स्त्री व्यक्ति और समाज दोनों में से समाज का बचाव करती है और स्वयं को समाप्त कर लेती है। मेरे इस शोध के माध्यम से इन सभी समस्याओं को शोध विषय के केंद्र में रखा जा रहा है।

समाज जीवन को अपने अनुसार चलना चाहता है इसके लिए वह एक परिकल्पना का निर्माण कर लेता है। मगर बदलते वक्त के साथ जीवन, दृष्टिकोण और विचार आदि धारणाओं में परिवर्तन होता है। जब इनमे से कुछेक पुरानी अवधाराणाएँ परिवर्तन के प्रतिरोध से टकराती हैं तब ये एक नई अवधारणा को जन्म देती है। ऐसे ही समाज द्वारा बनाई गई अवधारणाओं को इस शोध के विषय की परिकल्पना में प्रस्तुत किया जा सकता है।

समाज ने कुछ अपने नियम बनाए हैं जिनमें हर ओर से स्त्री को बांधने का प्रयास किया जाता है। कुछ इसी आधार पर **'यौनिकता के विमर्श'** को लेकर समाज की अपनी विचार दृष्टि और अवधाराणाएँ हैं। समाज यौनिकता को संबंधों में बांधने के पक्ष में है जैसे विवाह भी एक संस्था है।इसके अतिरिक्त सेक्सुअलिटी की स्वतंत्र मांग को इनके बनाए सिद्धांत स्वीकार नहीं करते। दूसरी बात सेक्सुअलिटी के जैविक कारणों को ही स्वीकार किया जाता है उसके पीछे की समाजिक निर्मिती को पुरुषसत्ता कभी स्वीकार नहीं करती है।

यौनिकता की परिभाषा समाज ने अपने लाभ के अनुसार गढ़ी है- पवित्रता, मर्यादा और आर्थिक संसाधनों पर पुरुषसत्ता का अधिकार तक ही स्त्री की सेक्सुअलिटी को केन्द्रित कर दिया

गया है। पुनरुत्पादन की पूरी प्रक्रिया ही समाज ने सत्ता स्थापित करने लिए गढ़ी है। आधुनिक सन्दर्भ में इन परिकल्पनाओं का परिक्षण करना ही इसका उद्देश्य है। **'यौनिकता के विमर्श'** में ये सिद्धांत और अवधाराणाएँ कहाँ तक जिम्मेदार हैं ? इन्हीं सिद्धांतों की अवधारणाओं को इस शोध की परिकल्पना के आधार पर परखा जाएगा।

यौनिकता के विमर्श को, जैववैज्ञानिक विमर्श से समाजिक निर्मिति के धरातल पर लाना।वैध-अवैध संबंधों के पीछे आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक कारणों की पहचान करना है। वैवाहिक संबंधों में यौनिकता के प्रति बदलती विचार दृष्टि आंकलन होगा। साहित्यिक दृष्टिकोण से **'यौनिकता के विमर्श'** की आधारभूमि क्या रही है ? इनके अलावा और भी अनछुए पहलुओं को शोध क्रिया के अनुरूप शोध विषय में शामिल किया जाएगा।

इस शोध विषय की अन्तरानुशासनिक प्रासंगिकता यह है कि जिस आधुनिक युग में हम सिनेमा जैसे विस्तृत क्षेत्र में सेक्सुअलिटी को पुरुषसत्ता अपने अनुरूप चलाना चाहती है वही स्थिति व्यवहारिक जीवन में समाज की रही है। हम यौन संबंधो की गतिविधियों में शामिल तो होते है लेकिन जब सेक्सुअलिटी पर खुलकर अपनी इच्छा प्रकट करने की बात आती है तो हम मौन धारण कर लेते है। **यौनिकता का विमर्श** एक नया मुद्दा है, इसी कारण इस विषय पर विचारों की प्रस्तुति बहुत कम देखने को मिलती हैं। साहित्य भी इस विषय के क्षेत्र में सिमित ही रहा है। साहित्य में इस विषय पर लिखा जाना आवश्यक है वो भी जिम्मेदार कारणों के साथ लिखा जाना चाहिए। व्यक्ति फुटपाथ से एम.एम.एस. की सीढियाँ, नग्न स्त्रियों की मैगजीन को खुलेआम खरीदते और बेचते हैं। तो फिर स्त्री व पुरुष के स्वतंत्र संबंध, लिविंग रिलेशनशिप आदि को हेय नजर से क्यों देखते है ? इस शोध विषय के माध्यम से इसी प्रकार के गंभीर मुद्दों को उठाया जाएगा।

यौनिकता का विमर्श जिसे नारी के चरित्र से जोड़कर विषय के विमर्श को कम कर दिया गया है। इस शोध के माध्यम से उसे विस्तार मिलेगा। क्योकिं सेक्सुअलिटी को समाज का प्रत्येक वर्ग और व्यक्ति अपने अनुरूप गढ़ लेता है और उसकी अपने अनुसार परिभाषा बना डालता है। जैसे पुरुषसत्ता ने स्त्री की सेक्सुअलिटी को हमेशा अपने पक्ष में रखने और उस पर हमेशा नियंत्रण बनाए रखने का प्रयास किया। बढ़ते रेप केस की घटनाएँ, प्रेम विवाह के पश्चात भी टूटते संबंध इसका बेहतर उदहारण है। स्त्री के लिए यौनिकता का विमर्श, स्त्री की स्वतंत्रता से है।

शोध प्राविधि से जुड़ी सामग्री एकत्र करने और शोध को प्रबंधित रुपरेखा में लाने के लिए मैं आलोचनात्मक, विश्लेषणात्मक और गुणात्मक प्राविधि का प्रयोग किया गया है। शोध से संबंधित आकड़ों को एकत्र करने के लिए प्रथम व द्वितीय स्रोतों का प्रयोग किया गया है जिसमें विचारात्मक लेख साहित्यिक प्रश्नावली विधि से आकड़े इक्कठा किए गए है।सत्ता के लिए यौनिकता का विमर्श आर्थिक लाभ पर प्रभुत्व स्थापित करने से है। सभी वर्ग के व्यक्ति यौनिकता को अपने लाभ के लिए इस्तेमाल कर रहे विज्ञापन इसका सटीक उदहारण है। इस प्रकार शोध विषय की प्रासंगिकता का विस्तार सभी क्षेत्रों में है और समय अनुरूप उपयोगी भी।

साहित्य में यदि इस शोध विषय की पड़ताल की जाए तो हम इसकी शुरुआत रीतिकालीन के दोहों में स्त्री यौनिकता को सिर्फ भोग और आन्नद के रूप में देखते हैं। जो प्रजा और राजा के के मन बहलाने की वस्तु मात्र बन गई है।

साहित्य में अश्लीलता का सवाल सामाजिक स्तर पर सदाचार की अवधारणा से जुड़ा है लेकिन इसमें कठिनाई यह है कि स्त्री-पुरुष के लिए सदाचार की सीमाएँ अलग-अलग हैं। इसलिए जीवन और समाज में परुष सब कुछ करने के लिए स्वतंत्र है तो वह साहित्य में सब कुछ कहने के लिए भी स्वतंत्र है। लेकिन स्त्री समाज और साहित्य में वही कर सकती है जो पुरुस उसके लिए तय कर सकता है। दोहरी मापदंड के कई उदाहरण साहित्य में भी पाए जाते हैं। 18 वीं सदी की तेलगु

मुददुपलानी की काव्य रचना 'राधिका सांत्वनम'की चर्चा करना उचित होगा। इस पुस्तक के संदर्भ में अलग-अलग समय पर हुई सामाजिक और साहित्यिक अश्लीलता के जातिक मुद्दों के कई रोचक आयामों का खुलासा करती है। राधाकृष्ण की प्रेम कथा को राधा की दृष्टि से देखने वाली इस रचना में उनके प्रेम प्रसंगों सहज से लेके अंतरंग संबंधों का बड़ा ही चित्रात्मक वर्णन हुआ है। लेकिन इस पुस्तक के छपते ही तेलगु के प्रगतिशील समाज सुधारक और तेलगु कविता का इतिहास लिखने वाले विरेशालिंगम तक ने मददुपलानी की कठोर आलोचना ही नहीं की बल्कि यहाँ तक कह डाला कि चूँकि वह वेश्या थी।

बीसवीं सद पर नजर डालने पर हम पते हैं कि जैनेंद्र के उपन्यास 'त्यागपत्र' में यौनिकता का विमर्श केन्द्रीय समस्या के रूप में दिखाया गया है। जिसमें व्यक्ति नहीं बल्कि समाज की निर्मिती जीतती है। स्त्री की सेक्सुअलिटी पर सत्ता का नियंत्रण कुछ ऐसा ही बना हुआ है। मोहनदास नैमिशराय का 'क्या मुझे खरीदोगे' स्त्री की देह को कर्ज के भार के रूप में प्रयोग किया गया है। उसकी सेक्सुअलिटी को ख़रीदा-बेचा जाता है। इस उपयास में स्त्री से यह नहीं पूछा जाता है कि वह किसके साथ रहना चाहती है स्त्री की यौनिकता को एक से दुसरे के पास हस्तांतरित कर दिया जाता है। जिसकी डोर पितृसत्ता के हाथों में हैं।

उषा प्रियंवदा की रचना **'शेष यात्रा'** में विवाह के संबंधों को आधार बनाकर दिखने का प्रयास किया गया है कि स्त्री की देह पर नियंत्रण कैसे रखा जाए ? इस उपन्यास में स्त्री को अपने नीचे रखने की पुरुषसत्तावादी मानसिकता का चित्रण मिलता है। कृष्णा सोबती का 'मित्रो-मरजानी' एक ऐसा उपन्यास है जिसमें स्त्री खुले तौर पर अपनी सेक्सुअलिटी की मांग करती दिखाई गई है। परन्तु अंत में भविष्य की चुनौतियों के सामने स्त्री को समाज के नियम स्वीकार करते दिखाया गया है।

मंजुल भगत के उपन्यास 'लेडीज क्लब' में श्रीमती गंडेविया के माध्यम से यौनिकता के जायज और नाजायज की सामाजिक धारणा को समझ सकते है। इस उपन्यास में हम देखते हैं कि पुरुष की नपुंसकता के कारण पत्नी किसी से प्रेम संबंध स्थापित कर संतान पैदा करती है तो समाज उसे स्वीकार नहीं करता। "बच्चा क्या समाज उनके और उनके प्रेमी के बच्चे को कबूल कर सकेगा ? और वह नपुंसक गंड़ेविया-उनका पति, क्या कबूल कर लेगा उस नाजायज बच्चे को ? यहाँ प्रश्न जायज नाजायज के साथ यह भी उठता है कि स्त्री की सेक्स को लेकर क्या मांग है जो उसे अपने पति की नपुंसक होने के कारण पूरी नही होती और जिसे वह अपने प्रेमी से पूरी करना चाहती है।(भगत, १९७८)

शशिप्रभा शास्त्री द्वारा लिखे गए 'नावें' उपन्यास में मालती और सोमजी के अवैध संबंध को दिखाया गया है। ऐसी अनेक स्थितियों का आंकलन कर हम समझ सकते हैं कि स्त्री सेक्सुअलिटी की आखिर चाहत क्या है ? वह प्रेम को संबंध के रूप देख सकती है, लेकिन संबंधको प्रेम में नहीं देख सकती । विवाह के पश्चात प्रेम करना और संबध बनाना लगातार इस प्रकार की संख्या में बढ़ोतरी होती जा रही है। इसका एक कारण स्त्री सेक्सुअलिटी की अपनी मांग हो सकती है। स्त्री इसे अपने नियंत्रण में रखना चाहती है जो इसकी स्वतंत्र इच्छा के अनुरूप हो।(शास्त्री, १९७४)

साहित्य ही नहीं सिनेमा ने यौनिकता के विमर्श को आज के युग में बखूबी तरीके से पेश किया है। समकालीन फिल्मों में देखे तो **'पार्चेड'**, **'मातृभूमि'**, **'बेगमजान'** जैसी फिल्मों ने सेक्सुअलिटी की अवधारणा को समझा और समाज को यह बताने का प्रयास किया है कि वास्तव में समाज में सेक्सुअलिटी की क्या मांग है ? और ये पितृसत्ता की विचारधारा से ग्रस्त लोग स्त्री सेक्सुअलिटी को किस रूप में देखते हैं ? यह सच है कि आज भी स्त्री की सभी समस्याएँ स्त्री की यौनिकता से जोड़कर देखी जाती हैं। **'मातृभूमि'** फिल्म में देखा जा सकता है कि स्त्री के शरीर पर पितृसत्ता किस प्रकार हावी है ? पुरुष प्रतिशोध भी स्त्री सेक्सुअलिटी को आधार बनाकर

लेता है। आज भी अधिकांश जगहों में स्त्री और पशु में कोई अंतर नहीं समझा जाता है। **'पार्चेड'** फिल्म में सेक्स वर्कर को एक मशीन के रूप में दिखाने का प्रयास कर समाज के समक्ष ये प्रश्न खड़े किए गए हैं कि स्त्री यदि सेक्स वर्कर है तो क्या उसकी संवेदनाएँ और उसकी पीड़ा के कोई मायने नहीं रखती हैं ?

आज पुरुष स्त्री को किसी मशीन के रूप में इस्तेमाल करना चाहता है और वह स्त्री की यौनिकता और मशीन में कोई अंतर नहीं समझता। बेगमजान में स्त्री की सेक्सुअलिटी पर एक अलग नजरिया दिखाई देता है । इस फिल्म में दिखाया गया है कि एक स्त्री ने किस प्रकार अपनी सेक्सुअलिटी को आर्थिक दृष्टि से देखा और किस प्रकार अपनी यौनिकता को किसी बाजार का रूप दे दिया।लेकिन इसके पीछे का एक कड़वा सच पितृसत्ता समाज का होना है जो नारी के लिए किसी अभिशाप से कम नहीं हैं। यह समाज जरूरत के हिसाब से स्त्री का प्रयोग करता है और जरूरत ख़त्म होते ही इसे नष्ट करने का प्रयास करता है। स्त्री के आदि व अंत दोनों पक्षों को यह पितृसत्ता समाज अपने अधीन रखना चाहता है।

स्त्री की सेक्स्सुअलिटी को सैधांतिक नजरिए से देखे तो नारीवादी आलोचकों ने इस विषय पर विस्तार से अपना मत प्रस्तुत किया है रेडिकल नारीवादी का मत है कि लिंग पर आधारित जेंडर के फर्क हमारे जीवन के लगभग हर पहलू की संरचना करते है शुलामिथ फ्रायास्तोन की किताब में लिखा है "सेक्स वर्ग की श्रेणी इतनी गहराई तक पहुची है की वह लगभग अदृश्य सी जान पड़ती है। पित्रसत्तात्मक पुरुषों की समग्र अधिसत्ता की प्रणाली है। पित्रसत्तात्मक विचारधारा महिलाओं को उनके लिंग के हिसाब से इस कदर परिभाषित करती है गोया उनका काम पुरषों की कामवासना की पूर्ति करना हो और उनकी संतानों को जनना हो बस यही पहचान उन्हें दी जाती रही है स्त्री के पास गर्भधारण की छमता है इसलिए उनको पितृ सत्ता अपने अनुरूप बना दिया गया है इनका मानना है की स्त्री की सेक्स्शुअलिटी ही उनके उत्पीड़न का

कारण है जिसको पुरुषों ने जब चाहे जैसे चाहे इस्तेमाल किया है यही स्थिति साहित्य में यौनिकता के विमर्श की है।(साधना आर्य न. म., २०१५)